International Journal of Applied Research 2020; 6(6): 374-377

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2020; 6(6): 374-377
www.allresearchjournal.com
Received: 19-04-2020
Accepted: 22-05-2020

डॉ0 सोनी
अब्दलपुर रैनी (टी.सी.ए. ढोली)
सकरा, मुजफ्फरपुर, बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ0 सोनी
अब्दलपुर रैनी (टी.सी.ए. ढोली)
सकरा, मुजफ्फरपुर, बिहार, भारत

जनकवि नागार्जुन

डॉ0 सोनी

सारांश
जनकवि नागार्जुन आम जनता की समस्याओं के अमर उद्गायक थे। वे एक कवि के साथ ही एक सामाजिक राजनीतिक संघर्षो के जुझारू कार्यकरता भी थे। जनसरोकार उनकी पहली प्रतिबद्धता थी। नागार्जुन की कविता अपने समय और समाज की विसंगतियो, विकृतियों, का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करती है, इनकी अधिकांश कविताएं राजनीतिक है, जिनमें अधिकतर व्यंगपूर्ण हैं, जो राजनीति समस्त जीवन व्यवस्था का सामाजिक ढांचे का आर्थिक–सांस्कृतिक संबंधों का नीतियों का नियामक तत्व बन गई है, नागार्जुन उसकी विस्तृत परिधि को अपनी कविताओं में समेटने का प्रयास करते हैं।

प्रस्तावना
नागार्जुन की कविता की उस दौर की है, जब आजादी बिल्कुल करीब थी अथवा आजादी के बाद भी देशी शासन व्यवस्था का रंग–ढग बदला–बदला सा बना हुआ था। नागार्जुन ने यह भाप लिया था कि जिन सत्ताधारियों ने देश की जिम्मेदारी संभाली है, वह इतने सक्षम नहीं कि सब को साथ लेकर चल सके। बहुजन हिताय बहुजन सुखाय के संकल्प को पूरा कर सके। आजादी से पहले की सत्ता व्यवस्था और आजादी के बाद की सत्ता–व्यवस्था की कथनी एवं करनी में कोई खास अंतर नहीं था। अंतर यदि था तो केवल इस बात का कि ब्रिटिश औपनिवेशिक व्यवस्था हमारे देश को लूट–लूट के यहां की पूंजी को अपने देश ले जा रही थी और आजादी के बाद हमारे देश की सत्ता व्यवस्था अपने ही देश को लूट कर अपने बैंक 'बैलन्स' को बढ़ाने में लग गई थी। नागार्जुन इन अव्यवस्थाओं का विरोध कड़े शब्दों में करते हैं। नागार्जुन गहरी राजनैतिक–दृष्टि रखते हैं। उनके लिए राजनीति का अर्थ है–संपूर्ण व्यवस्था में परिवर्तन लाने के लिए लड़ाई सत्ता का रस पीना नहीं। वह स्वयं को जनता के प्रति जवाबदेह पाते हैं। अपनी जन–प्रतिबद्धता के चलते जनकवि नागार्जुन जिस तेवर के साथ राजसत्ता पर हमला बोलते हैं, वैसा हमलावर तेवर किसी दूसरे कवि में शायद ही दिखाई देता है। जब–जब बाबा नागार्जुन को लगा कि राजनीति आम जन के हितों के विरूद्ध जा रही है या राजनीतिक दल जनता को धोखा दे रहे हैं तब–तब नागार्जुन जनता की आवाज बन कर उठ खड़े हुए। नागार्जुन का गुस्सा, आक्रोश, खीझ, झुंझलाहट उनके व्यंग में स्पष्ट होता है। यह व्यंग्य ही नागार्जुन की कविता की विशिष्ट पहचान रहे हैं। नागार्जुन मनुष्य के उत्पीड़न के जो उत्तरदायी हैं। उन पर तीखा प्रहार करना चाहते हैं। इस तीखे प्रहार को करने के लिए व्यंग से बढ़कर दूसरा कोई उपयुक्त माध्यम नहीं हो सकता है। यही कारण है कि व्यंग्य नागार्जुन की कविताओं का आंतरिक संस्कार हो गया, स्वभाव हो गया है, खगेंद्र ठाकुर के शब्दों में, ''सामाजिक सत्य व्यक्त करने की प्रवृत्ति ने उनके व्यंग्य को तीक्षणता और तीव्रता प्रदान की है। आधुनिक हिन्दी कविता में नागार्जुन से बेहतर कोई व्यंगकार नहीं है... व्यंग को जितनी व्यापकता और गहराई नागार्जुन ने प्रदान की है, उतनी किसी दूसरे ने नहीं।'' [1] नागार्जुन की प्रखर संवेदनशीलता जनता के दिमाग को खोलने का काम करती है। उसका मूल लक्ष्य जनता को उत्तेजित करना है, अपने कशाघात द्वारा लोगों की आंखें खोलना है। अपने आसपास की विकृतियों को मात्र व्यंग्य के रूप में परोस देने भर को व्यंग्य लेखन नहीं कहा जाता। नागार्जुन व्यंग्य को इस रूप में प्रकट करते हैं कि वह परिवेश के बदलाव की मानसिकता को उत्पन्न करता है। वह अपने व्यंग्य के माध्यम से समाज में व्याप्त गंदगी को दूर करने का प्रयास करते हैं। स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद जीवन में प्रवेश करने वाली राजनीतिक प्रक्रिया ने व्यंग की प्रधानता को विकसित किया है, शोभाकांत ले लिखा है– ''आजादी हासिल करने से पहले हमारे रष्ट्रीय नेताओं का ध्यान समाज की छोटी–बड़ी विसंगतियों की ओर अक्सर जाता था। वे सामाजिक समस्यओं का हल निकालने को उद्यत दिखते थे, रूढ़ियों के खिलाफ वे अक्सर लोहा लेते थे। स्त्रियां, शुद्रों, निर्धनों, पीड़ितो का पक्ष लेने में हिचकते नहीं थे। लेकिन अब इन मामलों में उन्होंने देहातों को अनाथ छोड़ दिया है। जनता से हमारे प्रभुओं का उतना भर मतलब रहता है, जितने से चुनाव में जीत हासिल हो। बाकी भाड़ में जाये गांव के लोग।

चुनावों में जीत हासिल करके जब वे ऊपर पहुंचते हैं और गदियों पर बैठते हैं तो उनका सारा ध्यान दलीय एवं सर्गीय स्वार्थ साधना में लग जाता है। सामाजिक समस्याओं की रत्ती भर भी परवाह उन्हें रह नहीं जाती।'' [2] नागार्जुन इन्हीं मौकापरस्त राजनीतिक दलों के नेतों को अपने व्यंग्यों का निशान बनाते हैं जो आजादी के बाद लिए गए अपने संकल्पों, वादों और कर्तव्यों–दायित्वों का निर्वाह करना भूलकर अपनी स्वार्थसिदि में लीन हो गये हैं। ''नागर्जुन के व्यंग्य भारतीय जनता की प्रखर राजनीतिक चेतना के साथ, उसके सहज बोध और जिंदादिली के भी अचूक प्रमाण है। '' [3] नागार्जुन की चेतना सामान्य जनता को भ्रम जाल से निकालकर उन्हें उनकी जनशक्ति का अहसास कराती है।

समाज की स्थिति सदैव परिवर्तशीलत है, रचनाकार भी इसी समाज में रहता है, जो हर क्षण, हर पल परिवर्तित होता रहता है। कभी यह परिवर्तन बहुत धीमा, तो कभी बहुत तीव्र होता है। रचनाकार को समाज पर प्रभाव डालने वाली प्रत्येक घटना पर अपनी दृष्टि बनाए रखनी होती है। तभी वह एक संवेदनशील, जागरूक रचनाकार बन पाता है। नागार्जुन ने अपने समय में समाज में आए राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक सभी परिवर्तनों को न केवल पहचाना, बल्कि उस पर अपनी तीव्र प्रतिक्रिया भी प्रकट की है। नागार्जुन ने समाज के प्रत्येक वर्ग के लोगों की बात सुनी, समझी, जानी व परखी है और उसे अपनी कविता के माध्यम से सत्ता तक पहुंचाया भी है, फिर चाहे इसका परिणाम जो भी हो, वो कभी डरे नहीं। नागार्जुन सामाजिक जड़ता, शोषण, दमन, और राजनीतिक दुर्व्यवस्था की गंभीर आलोचना करते हुए व्यंग्य की तीखी धार का सहारा लेते हैं। इनकी कविता में भारतीय समाज का निम्न शोषित वर्ग हिस्सा बना है साथ ही वह कवि के क्रोध, व्यंग्य और आक्रमण का लक्ष्य भी रहा है। नागार्जुन ने अपने व्यंग्य का प्रहार बेझिझक, बिना किसी भय के किया है। विजय बहादूर सिंह के शब्दों में– ''नागार्जुन अकेले ऐसे कवि हैं जिन्हें न तो शासन की त्यौरी का भय त्रस्त करता है न ही कला सरस्वती का आगन्तुक कोप ही। ''4 नागार्जुन की तीखी व्यंग्यात्मक टिप्पणियां राजनेताओं–नेहरू, इंदिरा गांधी, प्रजातंत्र आदि की व्यवस्था का पर्दाफाश करती है। नागार्जुन अपने समय की समाज व्यवस्था को बदलकर शोषण व दमन चक्र से मुक्त एक नयी समाज–व्यवस्था की रचना करना चाहते हैं जहां वर्ग–संघर्ष न हो। समाज के दोहरे मानदंडों ने वर्ण, जाति, धर्म–व्यवस्था आदि को प्रभावित कर संपूर्ण समाज व्यवस्था को विकृत कर दिया था। नागार्जुन समाज में पाए जाने वाले वैषम्यों के कारणों का खुलासा करते हुए उस पर तीखी टिप्पणी भी करते हैं।

नागार्जुन के व्यंग्य की भेदक क्षमता के पीछे का रहस्य यथार्थ है। नागार्जुन की तीव्र दृष्टि यथार्थ को अत्यंत गहराई से पकड़ती है। हमारे देश की राजनीतिक प्रणाली जितनी सफल और सपाट दिखाई देती है, उससे कहीं अधिक लाग–लपेट कर वह जनता की आंखों में धूल झोंकने का काम करती है। देश में राजनीतिज्ञों द्वारा जगह–जगह किए जा रहे नाटकों की सच्चाई नागार्जुन जनता के सामने ला रखते हैं।–

''आश्वासन की मीठी वाणी भूखों को भरमाती
पला पड़ता है लेकिन वह नंगों को गरमाती,
जनमन को आडम्बर प्रिय है, प्रिय है उसको नाटक,
खोल दिये हैं तुमने कैसे इंद्रसभा के फाटक।'' [5]
(अब तो बंद करो हे देवी, यह चुनाव का प्रहसन! 1972)

व्यवस्था की इस दोहरी नीतियों को नागार्जुन भली–भांति पहचानते थे। चुनाव के समय विविध राजनीतिक पर्टियां मंच पर अपने बड़े–बड़े वादों आश्वासनों, कार्य–प्रणालियों द्वारा जनमन के समक्ष उतरती है और अपने–अपने दलों के लिए वोट जुटाने का काम करती है। नागार्जुन इस समस्त गतिविधि को नाटक कहते हैं जिसमें कभी दलों के नेता अपना–अपना अभियान आंरभ कर जनता का मनोरंजन करते हुए तालियां बटोरते हैं। भूखे पेट में आस्वासन की मिठाई ठूंस–ठूंसकर भरने वालों ने जनता को इतने बड़े झांसे में रखा है कि वह अब तक काफी टूटन का जीवन व्यतीत करने लगी है। यहां जनता को जीने की बुनियादी जरूरतें तक उपलब्ध नहीं, और वहां ब्रिटेन की महारानी के आगमन पर धन पानी की तरह बहाया जा रहा है। नागार्जुन इस नागवार दृश्य पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं।–

''आओ रानी हम ढोयेंगे पालकी,
यही हुई है राय जवाहर लाल की।
''''''''''''''''
पार्लमेंट के प्रतिनिधियों से आदर लो, सत्कार लो,
मिनिस्टरों से शेक हैंड लो, जनता से जयकार लो,
दायें–बायें खड़े हजारों आफिसरों से प्यार लो,
धन–कुबेर उत्सुक दीखंगे, उनके जरा दुलार लो,
× × × ×
एक बात कह दूं मलका, थोड़ी–सी लाज उधार लो,
बापू को मत छेड़ो अपने पुरखों से उपहार लो,
जय ब्रिटेन की! जय हो इस कलिकाल की।'' [6] (1961)

नागार्जुन की यह व्यंग्यात्मक टिप्पणी हमारे राजनीतिक व्यवस्था की पोल– खोलकर जनता के सामने ला रखती है। नागार्जुन का व्यंगय व्यवस्था का मुखौटा उघाड़ता हुआ, चुनौती देता हुआ, फटकारता हुआ और अहिस्ता–अहिस्ता सहलाते हुए गालों पर तमाचा जड़ता हुआ आधुनिक कबीर का ही परिचायक है। संघर्षरत लोगों पर आजादी के पश्चात् की सत्ता व्यवस्था किस तरह लाठी चार्ज करती है। नागार्जुन व्यवस्था की इस औदार्य नीति पर कड़ा व्यंग करते हैं–

''दस हजार दस लाखमरे पर झंडा ऊंचा रहे हमारा,
कुछ हो, कांग्रेस शासन का डंडा ऊंचा रहे हमारा,'' [7](झण्डा,1995)

नागार्जुन के व्यंग्य बेजोड़ हैं। वह जिस वास्तविकता को कविता में अभिव्यक्त करते हैं, वह जटिल न होते हुए ठोस–सत्य का ही पर्याय है। वास्तविकता को खुलेपन से व्यक्त करने के कारण ही नागार्जुन के व्यंग्य तीखे, पैने, और आक्रामक होते हैं, जो सत्ता में बैठे अधिकारियों की नींद उड़ा देते हैं। उनकी कुर्सी हिला देते हैं। नागार्जुन राजनीतिक पार्टियों के चिहों को लेकर भी व्यांग्य करते हुए लिखते हैं–

''नया तरीका अपनाया है राधे ने इस साल
बैलों वाले पोस्टर साटे, चमक उठी दीवाल,'' [8](नया तरीका, 1953)

पहले कांगेस का चुनाव चिह था–जोड़ा बैल, बैलों वाले पोस्टरों ने दीवार को चमका दिया है। शासक दल का प्रचारक बन जाने से जो लाभ होता है, उस पर नागार्जुन का यह व्यंग्य अत्यंत मारक है।

इसी तरह, मताधिकार पर आधारित हमारे संसदीय जनतंत्र की शासक दलों ने जो दुर्गति कर रखी है, उसे मूर्त करते हुए नागार्जुन लिखते हैं–

''मत–पत्रों को चबा गए देवी के वाहन
ऊपर नीचे शुरू हुआ उनका आराधन
गूंगापन छा गया देश पर डर के मारे
बड़े–बड़े को भी दिखते है दिन में तारे...'' [9] (जय प्रकाश पर पड़ी लाठियां लोकतंत्र की, 1974)

नागार्जुन का यह भेदक व्यंग्य पूंजीवादी शासकों पर हैं, जिन्होंने संसदीय जनत्रंत को अपने पेट भरने का खाद्य–पदार्थ बना लिया है। ''चबाना'' क्रिया का जो अर्थ है, उससे इनका व्यंग्य सशक्त हो जाता है। साथ ही, इंदिरा गांधी की मध्यवर्गीय राजनीति पर व्यंग्य हुए नागार्जुन लिखते हैं–

''सेंटर में हो पूरब–पश्चिम
उत्तर–दक्षिण एक करोगी।'' [10] (नदियां बदला ले ही लेंगी, 1980)

यहां 'सेंटर' द्वि–अर्थ प्रकट करता है, एक अर्थ है–केंद्रीय–सत्ता, दूसरा–मध्यम–वर्ग, इंदिरा गांधी अपनी सत्ता के लिए कोई भी कार्यविधि अपनाने को तत्पर रहती है। नेताओं ने देश की राजनैतिक प्रणाली को खोखला बना दिया है। जन–समूह को एकत्र करने के लिए प्रचार–प्रसार की जो प्रणाली अपनाई जाती है, माइक लगाकर जोरदार भाषणबाजी होती है, जनता को मुफ़्त में चीजें बांटी जाती है, दरअसल यह सिर्फ–और सिर्फ दिखावा भर है और कुछ नहीं है। बाबा नागार्जुन अपने समय व समाज को व्यापकता एंव पूरी केन्द्रियता के साथ देख–परख ही उस पर टिप्पणी करते हैं। वे चीजों व घटनाओं को उनके मूल से पकड़ते हैं, न कि उनकी शाखा–प्रशाखा से, जीवन सिंह ने लिखा है–'' जीवन–दृष्टि जीवनानुभाव व्यक्ति की पहचान, सामान्य जन की संगठित शक्ति और पाखंड को उद्घाटित करने की व्यंग्य–वक्रता नागार्जुन के कवि को जन्मघुटी में मिली है।'' [11] स्पष्ट है कि नागार्जुन के व्यंग्य अपने वर्तमान एवं समकालीनता के बोध को पूरी स्पष्टता से प्रकट करते हैं।

शासक–शोषक वर्ग के नेताओं के व्यक्तित्व की कुटिलता नागार्जुन के व्यंग्य को नुकीली और अधिक पैना बना देती है। मोरारजी देसाई पर नागार्जुन व्यंग्य करते हुए लिखते हैं–

''खादी में दाग लग गया, भाई मोरारजी!
क्रांति का भाग जग गया, भाई मोरारजी!
कुर्ता कफन से लड़ गया, भाई मोरारजी!
है दंग तुम्हारे वतन, भी मोरारजी!.....'' [12] (आखिर....इंसान हैकृ भाई मोरारजी, 1968)

इन पंक्तियों में तीखा और गहरा व्यंग्य मोरारजी के दोमुंहेपन और उनके ढ़ोंगी व्यक्तित्व का पर्दाफाश करता है। खादी में दाग का लगना, क्रांति का भाग जगना, सत्ता के स्वार्थपूर्ण दुरूपयोग और स्वतंत्रता की भावना का गला घोटना प्रकट करता है। कुर्ता और कफन की लड़ाई दरअसल सत्ता एवं जनता के टकराव को व्यंजित करती है। यह व्यंग्य मोरारजी देसाई के कांग्रेस में अति दक्षिणपंथी होने की वजह से अधिक मारक हो गया है। मोरारजी देसाई ने जनता के नाम पर इकटा किए गए चंदे को हजम करते हुए शर्म नहीं की तो नागार्जुन उन्हें कैसे छोड़ सकते थे। नागार्जुन एसे भ्रष्ट, जनता के गुनहगार नेताओं को कभी माफ नहीं करते। नागार्जुन के व्यंग्य की चमक, तेज और यथार्थ की कर्कशता ने उनकी कविताओं को जनप्रिय बनाने में विशेष भूमिका निभाई है। डॉ. बरसाने लाल चतुर्वेदी ने लिखा है, ''नागार्जुन एक सफल एवं सिद्धहस्त व्यंग्यकार हैं। इनकी कविताएं आग के गोले हैं। वे दाहक और दंशक है। कवि ने राजनीति पर भी सर्तक दृष्टि रखी है और निर्भिक होकर उस पर लेखनी चलाई है।'' [13] इस कथन को प्रासंगिक करती हुई नागार्जुन की कुछ पंक्तियां हैं–

''देश हमारा भूखा–नंगा घायल है बेकारी से,
मिले न रोटी–रोजी भटके दर–दर बने भिखारी से,
स्वाभिमान सम्मान कहां है, होली है इंसान की,
बदला सत्य अहिंसा बदली लाधी, गोली, डंडे है,
निश्चय राज बदलना होगा शोषक नेताशाही का,
पद–लोलुपता दलबंदी का भ्रष्टाचार तबाही का।'' [14] (झूमे बाली धान की, 1971)

नागार्जुन की उपरोक्त पंक्तियां में व्यंग्य की एक विशेषता है–उसका चुटकीलापन, देश–देशा की हालत जर्जर हो रही है, आजाद भारत से रू–बरू कराते हुए नागार्जुन नेताओं को उनके वास्तिवक भारत का साक्षात्कार करवा रहे हैं और वो भी चुटीले अंदाज में। वास्तिवकता को अपनी सारी जीवंतता के साथ अभिव्यक्त करने का तरीका नागार्जुन के पास बखूबी है। व्यंग्य नागार्जुन की कविता और उनके व्यक्तित्व की असली पहचान है। दरअसल, नागार्जुन, कबीर, भारतेन्द्रु, निराला की व्यंग्य परंपरा को एक नई जमीन प्रदान करते है। नचिकेता लिखते है,'' व्यंग्य–विदग्धता नागार्जुन की कविता की असली जमीन है। कबीर के बाद नागार्जुन ही हिन्दी कविता के सबसे बड़े व्यंग्यकार हैं।'' [15] सामान्य जनता का जीवन विवश बनाए रखने में शासन–व्यवस्था जितने प्रकार की कुचालों व दुरनीतियों का इस्तेमाल करती है, नागार्जुन भी उतने ही तरीकों से उन पर व्यंग्य करते हुए उनका पर्दाफाश करते हैं। जन साधारण की यातना के लिए जिम्मेदार शोषणमूलक व्यवस्था के हिमायतियों पर नागार्जुन के व्यंग्य वज्र बनकर टुटते हैं। नागार्जन नेताओं के सफेद लिबाज को उतार फेंक जनता के सामने उन्हें नंगा करने में भी कभी नहीं हिचकते। इसके लिए उन्हें ताकत जनता से ही मिलती है–

''जनता मुझसे पुछ रही है, क्या बलताऊं?
जनकवि हूं मैं साफ कहुंगा, क्यों हलकाऊं,'' [16](भरत–भूमि में प्रजातंत्र का बुरा हाल है, 1995)

'हकलाना' भौतिक बाधा की अपेक्षा आत्मविश्वास की कमी को दर्शाता है, किंतु नागार्जुन स्वयं को जनता के प्रति जवाबदेह मानते हुए उन्हें किसी छलावे में नहीं रखते हैं। वह बिना हकलाएं, पूरे आत्मश्विास के साथ जनता के सामने शासन व्यवस्था की नीतियों, योजनाओं, इरादों की पोल खोलकर रख देते हैं, सामान्य–जन और शासन व्यवस्था को लेकर नागार्जुन की समझ साफ, स्पष्ट और पारदर्शी है, इसमें कोई बनावटीपन नहीं है।

नागार्जुन की कविताओं का चरित्र मूलतः राजनीतिक है। कविता के क्षेत्र में राजनैतिक व्यंग्य का जो रूप उभरकर आता है, कई लोगों को असहजता की स्थिति में डाल देता है। नागार्जुन ने स्वयं लिखा है कि–''जिस व्यक्ति अथवा समाज की बुद्धि अन्य व्यक्ति या समाज पर निर्भर हो, समझना चाहिए कि उसकी मनोवृति पंगु हो गई है।'' [17] अर्थात् नागार्जुन यह भली–भांति पहचान गए थे कि हमारे देश की शासन व्यवस्था पूंजीवादियों से गठजोड़ कर उनके हितों को तर्जी देती रही है और जनता की आंखों में धूल झोंकने का काम बखुबी करती करती आयी है, किन्तु नागार्जुन समाज को नेताओं की इन झूठी, चिकनी–चुपड़ी बातों, मीठे–मीठे आश्वसनों पर निर्भर नहीं होने देना चाहते। वह सत्ता शासन व्यवस्था की राजनीति का पर्दाफाश करते हुए उस पर करारा व्यंग्य करते हैं। फिर उन्हें फर्क नहीं पड़ता कि कोई उनके राजनैतिक व्यंग्यों से असहज अनुभव करता है। नागार्जुन लिखते हैं–

''चाहे दक्षिण, चाहे वाम
जनता की रोटी से काम।''

जनता को केवल अपनी दो–जून की रोटी से ही मतलब रह गया है, उनका विश्वास दिन–ब–दिन राजनीतिक दलों से डगमगाता गया है। फिर उनके लिए दक्षिण दल हो या वाम दल, बस जो उन्हें रोटी, भोजन, अन्न उपलब्ध कराएगा, वह उसी को अपना सहयोग देगी। नागार्जुन के व्यंग्यों में कटाक्ष और उपहास का जो

रूप देखने को मिलता है वह उनकी रचनात्मक क्षमता की महीन और सूक्ष्म अवलोकन दृष्टि के कारण आता है। शोषण की कारगुजारियां व्यवस्था के गर्भ से ही जन्म लेती है। अतः व्यवस्था के यथास्थितिवाद से टकराए बिना काम नहीं चल सकता है। नागार्जुन के पूरे काव्य में व्यंग्य और आक्रोश का स्वर उनकी मारक सृजनात्मकता को गति देता है। व्यंग्य लेखन नंगी तलवार पर चलने जैसे खतरों से भरा होता है। साथ ही, रचनाकार पर समाज का उत्तरदायित्व भी आ जाता है, कि वह जिस सत्य को जनता के सामने उद्घाटित कर रहा है, वह कितना प्रांसगिक है? अन्यथा इसका विपरीत परिणाम उसे भोगना पड़ेगा। किन्तु नागार्जुन के व्यंग्य किसी को भी चुनौती देने से नहीं डरते हैं। अमृतराय की उक्ति है कि–''व्यंग्य पाठक के क्षोभ या क्रोध को जगाकर प्रकारांतर से उसे अन्याय के विरूद्ध संघर्ष करने के लिए सन्नद्ध करता है।'' [18] नागार्जुन इस संदर्भ में सर्वथा उपयुक्त है। व्यंग्य प्रयोजन रहित नहीं हो सकता सोदेश्यता व्यंग्य कविता का प्राण होती है। नागार्जुन के व्यंग्य विद्रोह और परविर्तन की उदाम आंकाक्ष को प्रकट करते हैं। राजनीति मुनष्य के जीवन को इस हद तक पर्भावित करती है कि वह खुलकर सांस नहीं ले सकता, नागार्जुन को उस पर व्यंग्य करने के लिए विवश कर देता है। भारत गांवों का देश है, इसलिए नागार्जुन ने गांवों को नई क्रांति क उन्मेष की आधार भूमि के रूप में ग्रहण करते हुए राजनैतिक व्यंग्यों का सहारा लिया है। ताकि गोंवों की भोली–भाली, निरक्षर जनता को राजनीतिक पहलुओं से सचेत किया जा सके। गांवों के विकास से ही नए बदलाव की संभावनाएं बनेगी।

नागार्जुन के व्यंग्य एक गहरी भेदक आंख की तरह है जो सीधे मर्म की थाह लेती है। इसी के सहारे वह कम–से–कम शब्दों में अत्याचारी शासकों का सार ढोंग या आडम्बर छिन्न–भिन्न कर डालते हैं, ऊंची–ऊंची कुर्सियों पर बैठे ऊंचे राजनीतिक पद पर पहुंचे नेतागण के भद्र व्यवहारों और खोखली नीतियों का भीतरी खाका एकदम सही–सही खींचते हैं। रणजीत साहा ने लिखा है कि–''कवि नागार्जुन की कविताओं में जहां समाकलीन राजनीति की बेतुकी और अनचाही दस्तकों, आहटों, और करवटों को बड़ी शिदत से महसूस किया जा सकता है, वहां फरेबी और सत्तालोलुप राजनेताओं के बेमेल गठबंधन, टोपी, मुकुट और मुखौटो की दिलचस्प प्रदर्शनी भी देखी जा सकती है। उन्होंने विडम्बनाग्रस्त राजनीति पर बेहद तीखा व्यंग्य किया है। उनके चुटीले व्यंग्य का अक्षयस्त्रोत सत्ता और व्यवस्था रही है–और समय–समय पर अपने समय के शीर्षस्थ राजनेताओं पर व्यंग्य करने से उनकी कलम कभी नहीं चूकी।'' [19]

निष्कर्ष

अतः कहा जा सकता है कि नागार्जुन के राजनैतिक व्यंग्य उनकी कविता की सबसे बड़ी शक्ति है, जो आज भी उनकी कविताओं को तात्कालिक बनाए हुए हैं। वर्तमान राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में नागार्जुन का व्यंग्य–काव्य अपनी प्रासंगिकता स्वंय सिद्व करता है।

संदर्भ

1. खगेन्द्र ठाकुर, कविता का वर्तमान, पृ 64
2. शोभाकांत, नागार्जुन : मरे बाबूजी,वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली, संस्करण–1990, पृ0 88
3. नागार्जुन की सामाजिक चेतना, पृ0 139
4. विजय बहादुर सिंह, नागार्जुन का रचना संसार, संभावना प्रकाशन, हापुड़, संस्करण–1982, पृ0 49
5. नागार्जुन रचनावली, भाग–2, शोभाकांत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2003, पृ 67
6. नागार्जुन रचनावली, भाग–1, शोभाकांत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2003, पृ 348
7. वहीं, पृ0 282
8. वहीं पृ0 238
9. नागार्जुन रचनावली, भाग–2, शोभाकांत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2003, पृ 85
10. वहीं, पृ0 243
11. नागार्जुन और उनकी युगधारा, जीवन सिंह, अलावा, नागार्जुन जन्मशती विशेषांक, जनवरी–फरवरी 2011, सं. रामकुमार, कृषक, पृ. 37
12. नागार्जुन रचनावली, भाग–2, शोभाकांत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2003, पृ 26
13. नागार्जुन–काव्य में व्यंग्य बोध, रमाकांत शर्मा, अलाव, नागार्जुन जन्मशती विशेषांक, जनवरी–फरवरी 2011, सं. रामुमार कृषक, पृ. 90
14. नागार्जुन रचनावली, भाग–2, शोभाकांत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2003, पृ 55–56
15. जनकविता के मुखर वैतालिक,नचिकेता, अलाव, नागार्जुन जन्मशती विशेषांक, जनवरी–फरवरी 2011, सं. रामुमार कृषक, पृ.105
16. नागार्जुन रचनावली, भाग–1, शोभाकांत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2003, पृ 4000
17. दिमागी गुलामी, नागार्जुन रचनावली, खंड–6,सं. नेमिचंद्र जैन, पृ. 36
18. आलोचना, 1980 अप्रैल–जून,सं. नामवर सिंह, पृ.32
19. अपराजेय जनकवि नागार्जुन, रणजीत साहा, आजकल, जनवरी 1999, सं. प्रताप सिंह सिंह बिष्ट. पृ. 21